क़स्बे का एक दिन

डोंगी पर सात आदमी बैठे हुए थे। तीन तो देहाती-शहराती यानी क़स्बाती लड़के थे, लड़के क्या, यही सत्रह और इक्कीस के बीच की उम्र रही होगी। इन तीन में से एक तो किसी महाजन का लड़का जान पड़ता था। वह पतली नाख़ूनी किनारे की धोती और रेशमी कुर्ता पहने था। उसके कुर्ते में सोने के बटन लगे थे। उसके सर पर सफ़ेद गान्धी टोपी और पैर में पंप जूता था। मुँह पान से रचा हुआ था। उम्र यही सत्रह-अठारह होगी, रंग साँवला, लेकिन नमक लिये हुए। वह किसी देहक़ान रईस के घर का लाड से बिगड़ा हुआ लड़का दीखता ही था। उसके संग जो दो और आदमी थे वह उससे उम्र में चार छः साल ज्यादा थे। वह शकल से ही बहुत घाघ नज़र आते थे। उनके रंग ढंग कुछ ऐसे थे कि जैसे वे उस लड़के के आशिक हों; लेकिन बंसलोचन ने पहली ही नज़र में जो चीज़ भाँप ली वह यह थी कि इन दो घाघों ने मिलकर इस बनिये के लौंडे को उल्लू फाँस रक्खा है और उसी के पैसे से गुलछर्रे उड़ाते हैं, उसी के सर चाट और मिठाइयाँ खाते हैं, उसी के पैसे से सिनेमा और सरकस देखते हैं, उसी के मत्थे पान बीड़ी सिगरेट का शौक करते हैं।

तो सात में तीन तो ये लोग थे जो आपस में हँसी मज़ाक कर रहे थे और किसी सिनेमा के बारे में रायज़नी कर रहे थे। दो आशिक़ों में से एक बीच बीच में कोई बाज़ारू गाना गुनगुनाता था।

बाक़ी चार में एक कोई खद्दरधारी सज्जन थे जो या तो अपने परगने या मंडल की कांग्रेस कमेटी के मेंबर या सभापति थे या इसी क़िस्म के नेता या खुशहाल किसान थे। दो बारह-तेरह साल के लड़के थे और एक पैंतिस- छत्तीस का तगड़ा-सा अहीर था, अपने पीतल के घड़े लिये हुए।

बंसलोचन आठवाँ सवार था। माझी बड़े ज़ोर ज़ोर से लोगों को बुला बुलाकर डोंगी में सवार कर रहा था। बंसलोचन के यह पूछने पर कि डोंगी अब कितनी देर में खुलेगी माझी ने बड़ी मुस्तैदी से कहा—बस अब खुलती ही है बाबू.....

बंसलोचन भी अन्दर जाकर बैठ गया और दूसरी सवारियों ही की तरह डोंगी के खुलने का इंतज़ार करने लगा। मगर डोंगी न आज खुलती थी न कल। माझी बदस्तूर गला फाड़ फाड़ कर सवारियों को आवाज़ दिये जा रहा था, और डोंगी में बैठे हुए लोग, खासकर वह खद्दरधारी महाशय (उनकी त्योरियाँ पूरे वक्त चढ़ी ही रहीं) बुरी तरह झुँझला रहे थे। कोई कहता, अरे अब चलते क्यों नहीं, हो तो गये बारह आदमी .....

एक कहता : अभी हमारे सामने से दो डोंगियाँ गयी हैं जिनमें पाँच ही आदमी थे। इनको बारह सवारियाँ मिल गयीं तब भी इनका पेट नहीं भरता.....

एक कहत : न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेंगी, यहाँ धूप के मारे हमारा सर चटका जा रहा है.....

एक कहता : अरे भाई चलो भी, हमें तो उतर कर बहुत दूर देहात जाना है। यहीं पर इतनी देर कर दोगे तो फिर तो आज सोलहों दंड एकादशी—

काले गठीले सख्तजान माझी पर इन झुँझलाहटों और तानों-तिशनों का कोई असर नहीं था। वह सवारियों को आवाज़ देने का काम बदस्तूर किये जा रहा था। इन बोलियों का जवाब वह या तो एक खिसियाई हुई-सी हँसी से या खामोशी से या टर्रेपन से या अपने उस पिटे हुए फ़िक़रे से अपनी समझ में लोगों की दिलजमई करके दे रहा था। लोगों को इसी तरह पेचो ताब खाते पाँच मिनट बीते, दस मिनट बीते, पन्द्रह मिनट बीते..... आधा घंटा हुआ.....लोगों के माथे पर बल पड़ गये, दो-एक ने माझी को ताव दिखलाने की ग़रज़ से अपने जूतों में पैर डाले और झोला या पोटली उठायी। लोगों को बग़ावत पर आमादा देखकर माझी ने डोंगी की रस्सी हाथ में ली और उससे खेलना शुरू किया। लोगों ने समझा तरकीब कारगर हुई, जूते फिर से उतार दिये गये, झोले भी वापस अपनी जगह पर रख दिये गये, और लोग इत्मीनान के साथ बैठ गये कि डोंगी अब चलने ही वाली है। मगर कहाँ, इधर लोगों ने फिर अपने जूते खोले और उधर मक्कार माझी ने फिर रस्सी छोड़ दी।.....फिर पाँच मिनट बीते, दस मिनट बीते, पन्द्रह मिनट बीते.....आध घंटा हुआ—

यहाँ तक कि बंसलोचन भी, जो बाकी सवारियों के पौन घंटा बाद डोंगी में दाखिल हुआ था, बुरी तरह उकता गया। मगर 'रामनगर, रामनगर, रामनगर जानेवाली सवारियाँ इधर, चार आने सवारी रामनगर' की आवाज़ें उठती ही रहीं और धीरे धीरे करके डोंगी में पन्द्रह सवारियाँ हो गयीं। इसी वक्त एक दूसरी डोंगी नज़र आयी जिसमें बहुत से बोरे लदे हुए थे और चार पाँच सवारियाँ थीं। अभी उसमें और सवारियों की गुंजायश थी। वह जा ही रही थी। लिहाज़ा बंसलोचन की डोंगी के कुछ हद से ज़्यादा उकताये हुए लोगों ने अपने लाठी-डंडे और झोले-झोलियाँ उठायीं और दूसरी डोंगी की ओर रुख किया। माझी ने इस बार लोगों के यह रुख-तेवर देखे तो चट उसकी समझ में आ गया कि अबकी मामला

टेढ़ा है, सवारियाँ सचमुच उतर जायेंगी। तब उसने आख़िरकार और सवारियों की माया छोड़ी और नाव की रस्सी खोली।

बारे सवारियाँ बैठने के पौने दो घंटा बाद डोंगी खुली और उन ऊब और थकान से अधमरे लोगों ने चैन की एक लंबी सांस ली।

डोंगी धीरे-धीरे सरकने लगी। पानी के बहाव के खिलाफ़ खेना यों भी मुश्किल है और अभी तो बरसाती पानी का जोर भी खत्म नहीं हुआ था। लिहाजा डोंगी सरक रही थी, बंसलोचन और दूसरे लोग हिल रहे थे और ऊंघ रहे थे और दो लड़के माझी को डोंगी तेज करने के लिए खोद रहे थे क्योंकि वे किसी के घर जीमने जा रहे थे और उन्हें इस बात का वाजिब डर था कि कहीं इतनी देर न हो जाय कि सारा सिलसिला ही बिगड़ जाय। लिहाज़ा वे एड़ लगाये जा रहे थे मगर डोंगी पर आडियल टट्टू की ही तरह उसका कोई खास असर नहीं था। इस सफ़र के दौरान में एकाध आदमी ने दो-एक तानें छेड़ने की भी कोशिश की लेकिन थकान और उकताहट के मोटे पर्दे को चीरने में वह भी नाकामयाब रहीं। लिहाज़ा कुछ पज़मुर्दा तानें गलों से निकलीं और फिर गलों में ही समा गयीं। बसलोचन भी ऊँघता-ऊँघता चिनिया बदाम छीलता, अमरूद खाता, पानी से खेल करता जब दो घंटे बाद बनारस से रामनगर पहुँचा तो उसके सिर में हलका-हलका-सा दर्द हो रहा था। दिन का एक बज गया था। सख्त बरसाती धूप निकली हुई थी।

तीन घंटे की उकताहट, डोंगी के सफ़र से पैदा सिर दर्द और नदी से घर तक घाम में पैदल चलने से बंसलोचन का हाल खराब था। फलतः वह चूर होकर एक टुटही आराम कुर्सी पर कोई पन्द्रह मिनट आंख मूँदकर लेटा रहा।

वह कमरा कस्बे का ही एक नक्शा था, शहर और देहात का वही

अनोखा मिलाप। एक बड़ी पुरानी जर्जर आरामकुर्सी, दो तीन तीन-साढ़े तीन टाँग की दफ्तरवाली कुर्सियाँ, एक दो छोटी मेजें, एक दो स्टूल, एक बड़ा-सा तख्ता जिस पर गन्दी मटमैली चादर बिछी हुई है और अगड़म-बगड़म चीजों का ऐसा जबरजंग अंबार लगा है कि तख्ते पर बैठने को फुटभर से ज्यादा जगह निकलनी मुशकिल है। कमरे भरमें ताक ही ताक जिनपर दुनियाभर की फुटकर चीजें रक्खी हैं—पीने की तम्बाकू का एक छोटा-सा काला-काला-सा ढेर, मट्टी के खिलौने (घर में बच्चे भी तो हैं आखिर!) कलम-दावात, दो एक सख्त पुरानी किताबें जिनके वर्क पीले हो गये हैं और जिनकी जिल्दें उखड़ चुकी हैं। पता नहीं यह किताबें कौन-सी हैं। इनमें शायद रामायण होगी, तुलसी की भी और पण्डित राधेश्याम कथा-वाचक की भी; इन्हीं में शायद मैट्रिक या मिडिल स्कूल की भूगोल, इतिहास, रेखागणित और नागरिक शास्त्र की किताबें होंगी, चन्द्रकान्ता सन्तति होगी, ग़बन और गोदान होगा—और इन्हीं में शायद 'रामराज्य' और 'काजल' के गानों की किताबें होंगी। घर का सारा पुस्तकालय इन्हीं ताकों पर अटा पड़ा है, हर रंग और मेल की किताबें गडमड पड़ी हैं। इन किताबों के अलावा ताकों पर और भी चीजें हैं जैसे साइकिल का पंप और लंप, एकाध दियासलाई बीड़ी और किसी चीज की पुड़िया। इन्हीं में से एक ताक पर होमियोपैथिक दवाइयों का एक छोटा-सा बक्स रखा है। कमरेभर में चार छाते चमगादड़ों की तरह लटक रहे हैं, छत की कड़ी से या खूँटी से या दरवाजे पर, या कोने में रखे हैं, छड़ी, जूते, खड़ाऊँ और पैंताबे के संग।

बंसलोचन के बहनोई रियासती कचहरी में पेशकार या अहलमद हैं। कभी किसी जमाने में वह होमियोपैथ भी थे। उस जमाने की यादगार के तौरपर उनके कमरे में उनका कलकत्ते के किसी होमियोपैथिक कालेज का

एक सर्टिफ़िकेट टँगा है जिसके टाइप के अक्षर भी अब बिना आंखों पर बहुत ज़ोर दिये पढ़े नहीं जाते।

पता नहीं बहनोई साहब की होमियोपैथी की लियाकत भी उनके सर्टिफ़िकेट की ही तरह धुँधली-धुँधली और मिटी-मिटी-सी है या उसके रंग अभी चटक हैं। वह बात चाहे जो हो लेकिन इसमें तो कतई कोई शक नहीं कि अगर उनकी बीवी या बच्ची सदा बीमार रहती है तो इसमें उनका कोई दोष नहीं है। आज भी बंसलोचन ने जाकर देखा कि उसकी छोटी भांजी मुनिया बीमार है। उसका लिवर बढ़ा हुआ है, पेट आगे को निकला हुआ है, टाँगे सींक जैसी हो रही हैं, खून की कमी से सारा शरीर पीला हो गया है और चेहरा कुछ अजब डरा-डरा और उखड़ा-उखड़ा-सा है। चेहरे पर कोई ताजगी या जान नहीं है जैसे किसी ने उसका सब रस सोख लिया हो। सालभर पहले बंसलोचन ने इसी लड़की को देखा था तो वह चिड़िया की तरह फुदकती फिरती थी। साल ही भर में उसकी यह दशा कैसे हो गयी कि अब जहाँ बिठाल दी जाती है या खड़ी कर दी जाती है वहाँ से हिल नहीं पाती, यह बात बंसलोचन की समझ में बिलकुल नहीं आयी।

बंसलोचन की बहन भी अब अकसर बीमार रहा करती है। ऐसे वह गाँव की लड़की थी, तन्दुरुस्त और मेहनती, शहर की लिफाफिया लड़कियों में वह नहीं थी जो फूँकने से उड़ जाती हैं, लेकिन अब पता नहीं उसे क्या हो गया है कि जब देखो तब कोई न कोई बीमारी उसे लगी रहती है, कभी पेट में बायगोला है तो कभी दाँत में दर्द है, कभी मलेरिया है तो कभी कुछ। आज भी उनके पेट में दर्द उठा हुआ था। रात भर नींद नहीं आयी थी। बहुत देर तक उनके बड़े लड़के प्रकाश ने तेल और शराब मिलाकर उनके पेट में मली थी तब कहीं जाकर कुछ थोड़ा-सा आराम आया था। सुबह से फिर दर्द का वही हाल था, न लेटे चैन था न बैठे, पेट में छुरियाँ-सी चल रही थीं, उनकी जगह पर दूसरा होता तो

मछली की तरह छटपटाता, लेकिन तकलीफ सहने की उनकी इतनी आदत थी कि चादर से मुँह तक ढँके खामोश पड़ी थीं। दर्द से उनका चेहरा विकृत हो गया था, लेकिन मुँह से आवाज़ उन्होंने नहीं निकाली। इतना ही नहीं सारे दर्द और सब कुछ के बावजूद खाना भी उन्हींने पकाया-पकवाया। यों उनकी जेठानी की बहू थी, लेकिन नादान लड़की, इतने बड़े घर का चौका उसके अकेले के मान का थोड़े ही न था। उसके भरोसे चौका छोड़ दिया जाय तो लड़के भूखे ही स्कूल जायँ और कचहरी वाले लोग भूखे ही कचहरी का रास्ता नापें। इसलिए बंसलोचन की बहन को हारी-बीमारी में भी आराम नहीं नसीब होता, उसके ज़िम्मे जो काम हैं (और सारे ही काम तो उसके ज़िम्मे हैं!) वह तो उसे करने ही पड़ते हैं, चाहे हँसी-खुशी करे चाहे रो-झींककर।.....और आज जब कि उसे सबसे ज्यादा आराम की जरूरत थी, उसे रत्तीभर आराम मयस्सर नहीं हुआ। यहाँ तक कि बंसलोचन को भी आज ही खाना-पीना होने के घंटे भर बाद पहुँचना था! बहन बंसी को चाहती बहुत हैं, लेकिन पेट में जब छुरियाँ चल रही हों और शरीर निढाल हो रहा हो, तब सारी चाहत धरी रह जाती है। तो भी जैसे भी हुआ मर-खपकर बहन ने बंसी के लिए रोटियाँ पकायीं, एक तरकारी पकायी और बड़े प्यार से खिलाने बैठीं। मगर बंसी ने बहन के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ती हुई देखीं तो उसके गले का कौर गले में ही अटक गया.....यह क्या जिन्दा आदमी का चेहरा है!

छुट्टी के रोज़ खाना खाकर लंबी तानना कस्बे की जिंदगी का एक जरूरी अंग है। (कहने की जरूरत नहीं कि यह नुस्खा उन लोगों का है जिनके पास इतना अवकाश है; यह थोड़े ही न है कि अठारह घंटे खटने वाले कस्बों में नहीं होते!) बंसलोचन के पास वक्त ही वक्त था, उसे करना ही क्या था, लोगों को देखने सुनने गया था वह हो ही गया। लिहाज़ा खाना खाकर उसने जो लम्बी तानी तो साढ़े पाँच बजे शाम तक

की खबर ली। उठकर उसने मुँह हाथ धोया ही था कि सुना महाराज, काशी-नरेश, की सवारी उधर से गुजरनेवाली है : 'महाराज' रामलीला की शोभा बढ़ाने जा रहे हैं! बंसलोचन भी बाहर घर के छज्जे पर निकल कर खड़ा हो गया। पहले बहुत से घुड़सवार सफेद और ब्राउन और चित-कबरे रंग के घोड़ों पर सवार, हाथ में बल्लम लिये, हाथ के करीब ही माउज़र लटकाये निकले, घोड़ा दौड़ाते हुए आये और दुलकी चाल से निकल गये। उन्हें देखकर बंसलोचन को अनायास पुराने जमाने के सैनिकों या 'सिकंदर' फिल्म की याद हो आयी। उनके बल्लम में कदाचित् राजचिह्न भी लगा हुआ था। पन्द्रह बीस घुड़सवारों के बाद 'महाराज' की फ़िटन आयी। फ़िटन में 'महाराज' सफेद बारीक अचकन पहने थे जिसके नीचे से उनके लाल कपड़े झलक रहे थे। एक आदमी उनके पीछे बैठा मक्खियाँ उड़ा रहा था। उस वक्त यह एक अजीब-सा खयाल बंसलोचन के दिमाग़ में आया कि घोड़े को या गाय-बैल को या किसी ऐसे जानवर को ऐसे किसी की जरूरत नहीं होती जो शरीर पर से और मुँह पर से और कनपटी पर से मक्खियाँ उड़ाये! मगर कहाँ राजा और कहाँ ये सब जानवर! पतली सी सड़क के दोनों ओर उनकी झुकी हुई 'प्रजा' हाथ जोड़े हर हर महादेव करती और महाराज की जय जयकार पुकारती और उनके बीच से गुजरते हुए उनकी बंदगी को क़बूल करते हुए काशी-नरेश। उस समूचे दृश्य में ऐसी कोई बात थी जो बरबस चित्रपट के प्रजावत्सल महाराज विक्रमादित्य की याद दिलाती थी!

× × ×

फिर रात हो गयी। लोगों ने खाना खा लिया और सो गये।

× × ×

सुबह बंसलोचन की नींद खुली तो उसने देखा कि उसके बहनोई और उनके दोनों लड़के, और बहनोई साहब के बड़े भाई सब बगल के घर

में दाखिल हो रहे हैं। बंसी की समझ में नहीं आया कि उस घर में आग लगी है या क्या हुआ है कि सब लोग वहीं जा रहे हैं। बंसी ने अपने मन में कहा : जरूर कोई वारदात हुई है, और वह भी लपककर वहीं पहुँचा। वहाँ अच्छा खासा हड़बोंग मचा हुआ था, कोई पचीस तीस आदमी एक छोटी सी कोठरी और दालान में घुसे कचर कचर कर रहे थे। सब एक साथ बोलने की कोशिश कर रहे थे। लिहाज़ा बोल सब रहे थे और सुन कोई नहीं रहा था। पहले तो बंसलोचन की समझ ही में नहीं आया कि यह हो क्या रहा है। तीन चार आदमियों से अलग अलग बात करने पर उसे मालूम हुआ कि रात वहीं चोरी हो गयी है और ये तमाम लोग मौक़े का मुआइना कर रहे हैं। धीरे धीरे बंसलोचन को सारी बातें मालूम हो गयीं। उस कोठरी और दालान में दो विद्यार्थी रहते हैं; उनमें से एक सातवीं में और दूसरा नवीं में पढ़ता है। रात को चोर उनकी लुटिया, फूल की थाली, बटली, फूल का गिलास सब उठा ले गये, चोरों के हाथ शायद दो चार रुपये भी लगे।

बड़े बड़े दानिशमंद लोग, एक से एक कानूनदाँ जो कानून की किताबें घोट कर पी गये हैं, इस वक्त सिर हिला-हिलाकर लड़कों से बयान ले रहे थे, जिरह कर रहे थे, उन्हें सलाह दे रहे थे कि उनको ऐसी हालत में क्या करना चाहिए। बड़ी सरगर्मी थी।

चोरी गयी हुई चीज़ कभी लौटकर तो आती नहीं, इसलिए इसकी तो फिक्र ही छोड़ देनी चाहिए कि उन लड़कों को फिर कभी उनकी लुटिया-गिलास के दर्शन हो सकेंगे; मगर इसमें तो कोई शक ही नहीं कि आज काफी चटपटे ढंग से दिन शुरू हुआ था। तलैया के सड़ते हुए, बँधे, काई-लगे पानी में ढेला फेंकने से जैसी हलचल पैदा होती है वैसी ही हलचल इस छोटी मोटी लुटियाचोरी से क़स्बे की ज़िन्दगी में भी पैदा हुई। आज की सुबह और दिनों की तरह निकम्मी नहीं थी : आज की सुबह ने तो आँख खोलते ही अपना जलवा दिखलाया था! लोगों के उत्साह का ठिकाना नहीं

था। उस तूफान को देखकर यही एहसास होता था कि जैसे हीरे जवाहरात की चोरी हो गयी हो। बुझे हुए चेहरे चमकने लगे थे। यहाँ तक कि मिडिल स्कूल के मास्टर साहब भी जो उधर से निकले तो वह भी इस जादू के घेरे में आ गये। उन्होंने भी चोरी में हमदर्दी से ज्यादा दिलचस्पी दिखलायी, आगे पीछे अंदर बाहर सब तरफ से मुकाम को देखा, फौरन अपनी बेशकीमत राय दी कि पुलिस को खबर करनी चाहिए और बाहर आकर कुर्सी खींचकर बैठ गये। उधर से उनके एक छात्र का बड़ा भाई निकला तो उसे बुलाकर पूछा :

—संतू तीन दिन से स्कूल क्यों नहीं जाता?

भाई ने बतलाया—उसकी उँगली में गलका हुआ है जिससे उसे बड़ी सख्त तकलीफ है—

—हाँ हाँ वह सब ठीक है, लेकिन तुमको मालूम नहीं था कि लड़का स्कूल न जाये तो उसकी अर्ज़ी जानी चाहिए?

—सो तो मालूम है मास्टर साहब, लेकिन इन्हीं सब परीशानियों के मारे अर्जी न भेजी जा सकी।

—न भेजिए न भेजिए, उसमें मेरे बाप का क्या बिगड़ता है। जब दो दो आने रोज़ के हिसाब से जुर्माना होगा तब आटे दाल का भाव मालूम होगा.....

कहकर मास्टर साहब ने ऐसी कठोर मुद्रा बनायी कि उसके आगे पत्थर भी पानी हो जाता। उनकी उस मुद्रा को देखकर बंसलोचन को एक अजीब बौखलाहट हुई कि उसके सामने कुर्सी पर जो आदमी बैठा है वह स्कूल का मास्टर है या कानिस्टिबिल या चुंगी का दारोग़ा?!

दो आने जुर्माने की बात सुनकर सन्तू के भाई के होश बाख्ता हो गये थे, बेचारे मास्टर साहब की बहुत चिरौरी-बिनती करना चाहते थे जिसमें मास्टर साहब जुर्माना न करें, लेकिन मास्टर साहब ने भी कोई कच्ची गोलियाँ तो खेली नहीं थीं कि वह यह न समझते कि इस वक्त वही

सिकन्दर हैं, उन्हीं का पाया बुलंद है। पहले तो मास्टर साहब ने तनिक भी न पसीजने का अभिनय किया और बुत की तरह बैठे रहे जैसे उनके कान में आवाज ही न पड़ रही हो, लेकिन जब सन्तू के भाई ने बहुत चिरौरी की और मास्टर साहब ने जान लिया कि वह अब अच्छी तरह उनके दाँव पर आ गया है तो उन्होंने धोबीपाट लगाया और सन्तू का भाई वह सामने जाकर गिरा चारों शाने चित्त। डपटकर बोले—'अच्छा तो जाओ अच्छे से पान लगवा लाओ और देखो दो सिगरेट भी लेते आना, पासिगशो। और हाँ आगे से इस बात का खयाल रखना। मैं बार बार माफ़ नहीं करूँगा। कायदे की पाबन्दी होनी ही चाहिए' और बंसलोचन की ओर देखकर झेंप सी मिटाते हुए जरा हँसे और बोले : अरे साहब न पूछिए, यह बड़े जाहिल लोग हैं, इतनी सी बात नहीं जानते कि लड़का स्कूल न जाये तो उसकी अर्जी भेजनी चाहिए। और फिर सन्तू के भाई को डपटकर बोले : तुम खड़े खड़े क्या सुन रहे हो ?...और देखना पीली वाली पत्ती भी रखवा लेना—

× × ×

बंसलोचन को आज ही घर वापिस होना था और उसकी डोंगी का वक्त हो गया था। बहन से इजाजत लेने घर में गया तो देखा वह बिस्तर पर एकदम शान्त निश्चल लेटी हैं। बंसी को देखकर उन्होंने उठने का उपक्रम किया, लेकिन बंसी ने उन्हें उठने नहीं दिया। बंसी ने देखा कि बहन को रातभर सख्त तकलीफ रही है, जिसकी तसवीर उनकी आँखों में उतर आयी है; नींद उन्हें नहीं आयी है और आँखें यत्किञ्चित् लाल हैं, बाल उलझे हुए हैं।

बंसी ने बाहर मर्दानखाने में आकर देखा कि वह उसकी बहन की बीमारी की छाया से बिलकुल मुक्त है। उस वक्त वहाँ नगर-चर्चा हो रही थी जो न जाने कैसे हर तरफ से घूम-फिरकर उसी चोरी पर आ गिरती

थी। बंसी के बहनोई खुद कम ही बोलते हैं, इसीलिए तख्त के एक सिरे पर बैठे वह तमाम बातचीत बड़े ध्यान से सुन रहे थे, और मुनिया पास ही नंगी खड़ी, आधे पेट का फ्राक और उसके ऊपर एक बहुत ढीली-ढाली, अजीब-सी, बेमेल रंगों की पुलोवर पहने, तेल में बनी हुई चने की घुघनी खा रही थी गो उसका लिवर बढ़ा हुआ था और अभी उसका मुँह भी नहीं धुला था और उसकी आँखों का कीचड़ बह कर गाल पर आ लगा था।

बंसलोचन घाट की ओर बढ़ा जा रहा था और वह मर्दानखाने के उन बीसियों ताकों से जितना ही दूर होता जाता, उसे उनका आकार उतना ही बड़ा होता हुआ जान पड़ता (वैसे ही जैसे रोशनी दूर होने के साथ-साथ छाया का आकार बढ़ता जाता है), यहाँ तक कि उसे सारा कस्बा ही एक दैत्याकार ताक-सा जान पड़ा जिस पर उसकी बहन और बहनोई और मुनिया और सन्तू के भाई और मास्टर साहब और उन स्कूली लड़कों और उनकी लुटिया चुरानेवालों की जिन्दगियाँ फुटकर चीजों की तरह गडमड पड़ी हैं।